तित्थयर

महावीर जैन आराधना

जैन भवन

चतुर्दश वर्ष : मार्च १९९१ : एकादश अंक

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष १४ : अंक ११
मार्च १९९१

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७

सूची

सोमदेव का राजनैतिक विवेचन ३२३
भगवान शान्तिनाथ के परम भक्त श्री पाड़ासाह ३३९
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ३४५
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३५१

तित्थयर

संवादपत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) विधि (१९५६) के ८ नम्बर धारा के अनुसार विवृति :

प्रकाशन स्थान :	कलकत्ता
प्रकाशन अवधि :	मासिक
मुद्रक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
प्रकाशक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सम्पादक का नाम :	गणेश ललवानी
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सत्वाधिकारी का नाम :	जैन भवन
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७

मैं, गणेश ललवानी, घोषणा करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे ज्ञान एवं विश्वासानुसार सत्य है ।

गणेश ललवानी

१५-३-६१

प्रकाशक का हस्ताक्षर

सोमदेव का राजनैतिक विवेचन

डा. नेमिचन्द्र शास्त्री

जैनधर्ममें जहाँ आत्मसुधार और आत्मशोधनकी ओर ध्यान दिया गया है, वहीं लौकिक समस्याओंको सुलझानेका भी पूर्ण प्रयत्न किया गया है। इस धर्मके आचार्योंने केवल पारलौकिक कल्याणका निरूपण करनेवाले साहित्यका ही निर्माण नहीं किया है, अपितु इस लोककी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक बातोंपर पूर्ण प्रकाश डालते हुए आध्यात्मिकताकी तरंगमें इस लोककी प्रत्यक्ष भौतिक—शारीरिक बातोंकी अवहेलना करना या उपेक्षा करना सर्वसाधारणके लिये असम्भव-सा है; इन शारीरिक आवश्यकताओंसे सम्बद्ध विषयोंपर भी अपनी लेखनी चलायी है।

सोमदेव सूरि व्यावहारिक जीवनोपयोगी विषयोंका निरूपण करनेवाले आचार्य हैं। यों तो इन्होंने आध्यात्मिक विषयोंका भी सूक्ष्म प्रतिपादन किया है पर प्रस्तुत निबन्धमें इनके राजनैतिक विचारोंपर प्रकाश डाला जायगा।

सोमदेव सूरिने राजतन्त्रका निरूपण किया है। इनके मतानुसार शासनकी बागडोर ऐसे व्यक्तिके हाथमें होती है, जो वंश-परम्परासे राज्यका सर्वोच्च अधिकारी चला आ रहा हो। राजा राज्यको स्थायी समझकर सब प्रकारसे अपनी प्रजाका विकास करता है। राजाकी योग्यता और गुणोंका वर्णन करते हुए बताया गया है कि "जो मित्र और शत्रुके साथ शासन-कार्यमें समान व्यवहार करता है, जिसके हृदयमें पक्षपात या अपनेपनेका भाव नहीं रहता और जो निग्रह—दण्ड, अनुग्रह—पुरस्कारमें समानताका व्यवहार करता है, वह राजा होता है,[1] राजाका धर्म दुष्ट, दुराचारी, चोर, लुटेरे आदिको दण्ड देना एवं साधु, सत्पुरुषोंका यथोचित रीतिसे पालन करना है।[2] सिर मुड़ाना, जटा धारण करना, व्रतोपवास करना राजाका धर्म नहीं है। वर्ण, आश्रम, धान्य, सुवर्ण, चाँदी, पशु आदिसे परिपूर्ण पृथ्वीका पालन करना राजाका कर्म राज्य है।[3] राजाकी योग्यताके सम्बन्धमें सोमदेव सूरिने लिखा है कि

---

[1] योऽनुकूलप्रतिकूलयोरिन्द्रयमस्थानं सः राजा—नीतिवाक्यामृत, विद्यावृद्धि समुद्देशः, सू० १

[2] राज्ञो हि दुष्टनिग्रहः शिष्टपरिपालनं च धर्मः, न युक्तः शिरोमुण्डनं जटाधारणादिकम्—वही, सू० २, ३

[3] वर्णाश्रमवती धान्यहिरण्यपशुकुप्यवृष्टिप्रदानफला च पृथ्वी, राज्ञः पृथ्वीपालनोचितं कर्म राज्यम्—वही, सू० ५, ४

राजाको शस्त्र और शास्त्रका पूर्ण पंडित होना आवश्यक है। यदि राजा शास्त्र ज्ञान रहित हो और शस्त्र विद्यामें प्रवीण हो तो भी वह कभी न कभी धोखा खाता है तथा अपने राज्यसे भी हाथ धो बैठता है। जो शस्त्र विद्या नहीं जानता, वह भी दुष्टों द्वारा पराजित किया जाता है, अतएव पुरुषार्थी होनेके साथ-साथ राजाको शस्त्र, शास्त्रका पारगामी होना अनिवार्य है। मूर्ख राजासे राजाहीन पृथ्वीका होना श्रेष्ठ है,[४] क्योंकि मूर्ख राजाके राज्यमें सदा उपद्रव होते रहते हैं, प्रजा को नाना प्रकारके कष्ट होते हैं। अज्ञानी नृप पशुवत् होनेके कारण अन्धाधुन्ध आचरण करते हैं, जिससे राज्यमें अशान्ति रहती है।

राज्य प्राप्तिका विवेचन करते हुए बताया है कि कहीं तो यह राज्य वंश-परम्परासे प्राप्त होता है और कहीं पर अपने पराक्रमसे कोई विशेष व्यक्ति राजा बन जाता है; अतः राज्यका मूल क्रम—वंश-परम्परा और विक्रम—पुरुषार्थ, शौर्य है।[५] राज्यके निर्वाहके लिये क्रम, विक्रम दोनोंका होना अनिवार्य है; इन दोनोंमेंसे किसी एकके अभावमें राज्य-संचालन नहीं हो सकता है।[६] राजाको काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष इन छः अन्तरंग शत्रुओं-पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है,[७] क्योंकि इन विकारोंके कारण नृपति कार्य-अकार्यके विचारसे रहित हो जाता है, जिससे शत्रुओंको राज्य हड़पनेका अवसर मिल जाता है। राजाके विलासी होनेसे शासन प्रबन्ध भी यथार्थ नहीं चलता है, जिससे प्रजामें भी गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है; और राज्य थोड़े दिनोंमें ही समाप्त हो जाता है। शासककी दिनचर्याका निरूपण करते हुए बताया है कि उसे प्रतिदिन राजकार्यके समस्त विभागों—न्याय, शासन, आय-व्यय, आर्थिक दशा, सेना, अन्तर्राष्ट्रीय तथा सार्वजनिक निरीक्षण, अध्ययन, संगीत श्रवण, नृत्य अवलोकन और राज्यकी उन्नतिके प्रयत्नोंकी ओर ध्यान देना चाहिये। राजाको स्वयं सहसा किसीपर विश्वास नहीं करना चाहिये, बल्कि समस्त कर्मचारियोंमें अपना विश्वास उत्पन्न करनेकी ओर लक्ष्य देना चाहिये।

---

४ वरमराजकं भुवनं न तु मूर्खो राजा; न ह्यज्ञानादपरः पशुरस्ति—वही, सू० ३७, ३६

५ राज्यस्य मूलं क्रमो विक्रमश्च—वही, सू० २६

६ क्रमविक्रमयोरन्यतरपरिग्रहेण राज्यस्य दुष्करः परिणामः—वही, सू० २९

७ अयुक्तितः प्रणीताः काम-क्रोध-लोभ-मद-मान-हर्षाः क्षितीशानामन्तरङ्गोऽरिषड्वर्गः—नीतिवा०, अरिषड्वर्गसमुद्देशः, सू० १

सोमदेव सूरिने राजाकी सहायताके लिये मन्त्री तथा अमात्य नियुक्त किये जानेपर जोर दिया है। मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि कर्मचारियोंको नियुक्त करनेवाला नृप आहार्य बुद्धि—राज्य संचालन प्रतिभासम्पन्न होता है।[८] जो राजा मन्त्री या अमात्य वर्गकी नियुक्ति नहीं करता उसका सर्वस्व नष्ट हो जाता है। राज्यका संचालन मन्त्री वर्गकी सहायता और सम्मतिसे ही यथार्थ हो सकता है।[९] जो शासक ऐसा नहीं करता वह अपने राज्यकी अभिवृद्धि एवं संरक्षण सम्यक् रूपसे नहीं कर सकता है। शासनमें आयी हुई शिथिलताको मन्त्रीगण ही दूर कर सकते हैं, वे अपनी बुद्धि द्वारा राज्यकी अभिवृद्धिमें सब प्रकारसे योगदान देते हैं। मन्त्रियोंके गुणोंका वर्णन करते हुए बताया है कि पवित्र, विचारशील, विद्वान्, पक्षपात रहित, कुलीन, स्वदेशज, न्यायप्रिय, व्यसनरहित, सदाचारी, शस्त्र विद्या निपुण, शासनतन्त्रके विशेषज्ञको ही मन्त्री बनाना चाहिये।[१०] मन्त्रिमण्डल राज्य व्यवस्थाका अविच्छेद्य अंग माना गया है। भारतीय नीतिशास्त्रमें मन्त्री, अमात्य या सचिव परिषद्पर सर्वत्र जोर दिया गया है। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें भी राज्य व्यवस्थाका कर्त्ता-धर्त्ता मन्त्रिमण्डल माना गया है।

मन्त्रिमण्डलके सदस्योंकी संख्या निर्दिष्ट करते समय आचार्य सोमदेव

---

८ मन्त्रिपुरोहितसेनापतीनां यो युक्तमुक्तं करोति स आहार्यबुद्धिः—नीतिवा०, मन्त्रिसमुद्देशः, सू० १

९ व्याधिवृद्धौ यथा वैद्यः श्रीमतामाहितोद्यमः।
व्यसनेषु तथा राज्ञः कृतयत्ना नियोगिनः॥
नियोगिभिर्विना नास्ति राज्यं भूपे हि केवले।
तस्मादमी विधातव्या रक्षितव्याश्च यत्नतः॥
—यशस्तिलकचम्पू, आ० ३, श्लो० २५-२६

१० शुचयः स्वामिनि स्निग्धा राजराद्धान्तवेदिनः।
मन्त्राधिकारिणो राज्ञामभिजाताः स्वदेशजाः॥
—यशस्ति०, आ० ३, श्लो० ११०

ब्राह्मणक्षत्रियविशामेकतमं स्वदेशजमाचाराभिजनविशुद्धमव्यसनिनमव्यभिचारिणमधीताखिलव्यवहारतन्त्रास्त्रज्ञमशेषोपाधिविशुद्धं च मन्त्रिणं कुर्वीत—नीतिवा०, मंत्रिस०, सू० ५

सूरिने ३, ५ अथवा ७ से अधिक मन्त्रिसंख्या होनेकी राय नहीं दी है।[११] मन्त्रिमण्डलके सदस्योंकी संख्याके सम्बन्धमें मध्यकालीन साहित्यमें मतभेद है; बाहस्पत्य १६, औशनस २०, शुक्र १० और मानवसम्प्रदायने १२ मन्त्रियोंकी संख्या बताई है। सोमदेव सूरिने राज्यकी आवश्यकतानुसार ३ से ७ तक संख्या बतायी है; उनका कथन है कि अधिक संख्याके रहनेसे शासन व्यवस्थामें गड़बड़ी होनेकी सम्भावना है।

मन्त्रियोंका कार्यक्षेत्र शासनके अतिरिक्त नयी नीति निर्धारित करना, राज्यके आय-व्ययके सम्बन्धमें नीति बनाना, राजकुमारोंकी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध करना, उनके राज्याभिषेकमें भाग लेना, परराष्ट्र नीति निर्धारण करना एवं साम्राज्यके समस्त कार्यों की देखरेख करना उनके कार्योंमें परिगणित थे। यद्यपि सोमदेव सूरिने मन्त्रियोंके कार्योंका विभाजन नहीं किया है किन्तु यशस्तिलकमें उन्होंने यशोधर राजाके मन्त्रिमण्डलका जो कार्यविभाजन किया है, उससे मालूम होता है कि मन्त्रियोंके कार्य पृथक्-पृथक् थे।

मध्ययुगमें धर्म राज्यसे पृथक् नहीं माना जाता था, अतः राजाकी परिषद्में एक पुरोहित भी रहता था; जिसका कार्य शत्रुके अनिष्टकारक अनुष्ठानोंका प्रतीकार करना, पौरोहित्य कर्म द्वारा राज्यकी अभिवृद्धि करना, आधि-व्याधिको नष्ट करना, सेनाको मौलिक शक्ति द्वारा बल प्रदान करना एवं प्रजाके धार्मिक कार्योंका निरीक्षण करना आदि बताया है। इसे शस्त्र, शास्त्र, दण्डनीति, ज्योतिष, मन्त्र-तन्त्र आदिका पूर्ण पण्डित होना अनिवार्य है।[१२] पुरोहितकी गणना मन्त्रिमण्डलमें नहीं की है, बल्कि राजवृद्धिके लिये शुभ मुहूर्तों एवं अन्य भविष्यके निरूपण के लिए उसका सम्मानपूर्ण पृथक्

---

११ एको मन्त्री न कर्त्तव्यः एको हि मन्त्री निरवग्रहश्चरति मुह्यति च कार्येषु कृच्छ्रेषु; द्वावपि मंत्रिणौ न कार्यौ; त्रयः पंच सप्त वा मंत्रिणस्तैः कार्याः; बहनोमंत्रिण; परस्परं स्वमतीरुत्कर्षयन्ति वही, सू० ६६, ६७, ६८, ७१, ७३

१२ पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडंगवेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यामभिविनीतमापदां दैवीनां मानुषीणां च प्रतिकर्तारं कुर्वीत ।। राज्ञो हि मंत्रिपुरोहितौ मातापितरौ अस्ततौ न केषुचिद्वाञ्छितेषु विस्तरयेत् ।। अमानुष्योऽग्निवर्षमतिवर्षं मरको दुर्भिक्षं सस्योपघातो जन्तुसर्गो व्याधिभूतपिशाचशाकिनीसर्पव्यालमूषकाश्चेत्यापदः —नीतिवा०, पुरोहित समुद्देशः, सू० १-३

स्थान बताया है। पुरोहितके पदपर ब्राह्मण जातिका ही व्यक्ति नहीं नियुक्त किया जाना चाहिये, बल्कि कोई भी कुलीन सदाचारी व्यक्ति जो नीतिशास्त्र और ज्योतिषका विद्वान हो, इस पदपर आसीन किया जा सकता है।

सोमदेव सूरिका शासक परिषद्में पुरोहितको सम्मिलित करना परम्परा निर्वाह का द्योतक ही प्रतीत होता है; क्योंकि राजाके यहाँ ऐसे चतुर गुणज्ञ विद्वान् और भी रहते थे, जो प्रजामें धार्मिकताका प्रचार एवं राजाके लिये भविष्य फलका प्रतिपादन कर सकते थे। फिर भी इन्होंने पुरोहितके पदमें पर्याप्त संशोधन किया है, उसकी गणना मन्त्रिमण्डलमें गौणरूपसे की है अर्थात् मन्त्रिमण्डलमें पुरोहितका रहना इनके मतसे आवश्यक नहीं है; हाँ भविष्यफल जाननेके लिये एक ऐसे विद्वान्को राजाको अवश्य नियुक्त करना चाहिये जो राज्यके धार्मिक स्वास्थ्यकी देखरेख कर सके। सोमदेव सूरि अपने समकालीन सभी नीतिकारों में यह मौलिकता लाये हैं। पुरोहितके पद, गुण, योग्यता आदि बातोंमें उन्होंने परम्पराका निर्वाह नहीं किया, बल्कि इस सम्बन्धमें अपने मौलिक विचार रखे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय विभाग—इसका प्रधान उद्देश्य राज्यको सुदृढ़ करना, सोमदेव सूरिने बताया है। इस विभागका प्रधान राजा या 'सन्धिविग्रहिक'को होना चाहिये। यह नियुक्त व्यक्ति राजासे मन्त्रणा कर युद्ध या मित्रता करनेकी नीति निर्धारित करे। इस विभागमें दूत नामक एक कार्यकर्त्ता नियुक्त किया जाना चाहिये जो अन्य राज्योंमें राजदूतका कार्य भली-भाँति सम्पादन कर सके।[१३] दूत को चतुर, सदाचारी, अव्यसनी, उदार, प्रत्युत्पन्नमति, प्रतिभावान्, विद्वान्, वाचाल, कुलीन, सहिष्णु, शूरवीर एवं स्वामिभक्त होना चाहिये।[१४] इस दूतका निर्वाचन भी मंत्रिमण्डल द्वारा ही

---

१३ अनासन्नेष्वर्थेषु दूतो मंत्री—नीतिवा०, दूत समुद्देशः, सू० १

१४ स्वामिभक्तिरव्यसनिता दाक्ष्यं शुचित्वममूर्खता प्रागल्भ्यं प्रतिभानवत्त्वं क्षान्तिः परमर्मवेदित्वं जातिश्च प्रथमे दूतगुणाः —वही, सू० २

दक्षः शूरः शुचिः प्रगल्भः प्रतिभानवान्।
विद्वान्वाग्मी तितिक्षश्च द्विजन्मा स्थविरः प्रियः॥
—यशस्ति०, आ० ३, श्लो० १११

होना आवश्यक है[१५] तथा इस पदके लिये कई व्यक्ति खड़े होने को लिखा है। राजदूतका समस्त प्रबन्ध और व्ययभार राज्यको उठाना पड़ेगा।

राजदूत तीन प्रकारके बताये गये हैं—निसृष्टार्थ, परिमितार्थ और शासनहर।[१६] जो दूत राजाका प्रतिनिधि होकर सन्धि, विग्रह आदि सभी कार्य करनेमें स्वतन्त्र हो, जिसे राज्य की ओर से समस्त अधिकार प्राप्त हों और जो अन्य राज्यमें अपने राज्यकी अभिवृद्धिके लिये समस्त साध्य-प्रयत्न स्वतन्त्र होकर कर सके वह निसृष्टार्थ; जो केवल अपने राजाकी बातको ही कह सके, अन्य अपनी ओरसे कुछ करने या कहनेका अधिकारी न हो वह परिमितार्थ एवं जो राज्यके लिखित सन्देशको अन्य राजाको पढ़कर सुनावे और जो लिखित राजाज्ञा प्राप्त किये बिना कुछ भी कार्य करनेका अधिकारी न हो वह शासनहर कहलाता है। प्रधान राजदूत निसृष्टार्थको ही माना गया है। यद्यपि इसको भी राज्यका आदेश कार्य करनेके लिये प्राप्त करना आवश्यक होता है, तो भी यह दौत्य कार्य में स्वतन्त्र ही रहता है।

सेना विभाग—का निरूपण करते हुए बताया गया है कि राज्यको सुरक्षित रखने एवं शत्रुओंके आक्रमणोंसे बचानेके लिये एक सुदृढ़ और बहुत बड़ी सेनाकी आवश्यकता है।[१७] यह विभाग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बताया गया है, राज्यकी आयका अधिकांश भाग इसमें खर्च होना चाहिये। इस विभाग की आवश्यक सामग्री एकत्रित करने एवं सेना सम्बन्धी व्यवहारके संचालनके लिये एक अध्यक्ष होता है, जिसे सेनापति या महाबलाधिकृत कहा गया है। गजबल, अश्वबल, रथबल और पदातिबल ये चार शाखाएँ सेनाकी बतायी

---

१५ कदाचित्सततसन्मानदानाह्लादितसमस्तमित्रतन्त्रः सचिवलोकमति-समुद्धृतमन्त्रः श्रीविलासिनीसूत्रितैश्वर्यवरेषु वसुमतीश्वसुरेषु खलु दूतपूर्वाः सर्वेऽपि सन्ध्यादयो गुणा इत्यवधार्या कार्या। इति गुण-विशिष्टमशेषमनीषिपुरुषपरिषदिष्टमखिलप्रयाणसामग्रीसूविधेयं···

—यशस्ति०, आ० ३, पृ० ३९५

१६ स त्रिविधो निसृष्टार्थः परिमितार्थः शासनहरश्चेति।
यत्कृतौ स्वामिनः सन्धिविग्रहौ प्रमाणं स निसृष्टार्थः॥

—नीतिवा०, दूतस०, सू० ३-४

१७ द्रविणदानप्रियभाषणाभ्यामरतिनिवारणेन यद्धिहतं स्वामिनं सर्वावस्थासु बलोसंवृणोतीति बलम्—नीतिवा०, बलमुखद्देश, सू० १

है। इन चारों विभागोंके पृथक-पृथक् अध्यक्ष होते हैं, जो सेनापतिके आदेशानुसार कार्य करते हैं। चारों प्रकारकी सेना में गजबल सबसे प्रधान बताया है,[१८] क्योंकि एक-एक सुशिक्षित हाथी सहस्रों योद्धाओंका संहार करने में समर्थ होता है। शत्रुके नगरको ध्वंस करना, चक्रव्यूह तोड़ना, नदी, जलाशय आदि पर पुल बनाना एवं अपनी सेनाकी शक्तिको दृढ़ करनेके लिये व्यूह रचना करना आदि कार्य भी गजबलके हैं।[१९] गजबलका निर्वाचन बड़ी योग्यता और बुद्धिमत्ताके साथ करना चाहिये। मन्द, मृग, संकीर्ण और भद्र इन चार प्रकारकी जातियोंके हाथी तथा ऐरावत, पुण्डरीक, कामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीकान इन आठ कुलोंके हाथियोंको ही ग्रहण करना इस बलके लिये आवश्यक है। गजोंके चुनावके समय जाति, कुल, वन और प्रचार इन चारों बातों के साथ शरीर, बल, शूरता और शिक्षापर भी ध्यान रखना आवश्यक है।[२०] अशिक्षित गजबल राजाके लिये धन और जन का नाशक बताया गया है।[२१]

अश्वबलकी शक्ति भी सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी गयी है, इसे जंगम सैन्यबल बताया है। इस सेना द्वारा दूरवर्ती शत्रु भी वशमें हो जाता है; शत्रुकी बढ़ी-चढ़ी शक्तिका दमन, युद्धक्षेत्रमें नाना प्रकारका रणकौशल एवं समस्त मनोरथ सिद्धि इस बल द्वारा होती है।[२२] अश्वबलके निर्वाचनमें भी

---

१८ बलेषु हस्तिनः प्रधानमङ्गं स्वैरवयवैरष्टयुधा हस्तिनो भवन्ति।
—वही, सू० २

१९ हस्तिप्रधानो विजयो राज्ञां यदेकोऽपि हस्ती सहस्रं योधयति न सीदती प्रहारसहस्रेणापि। सुखेन यानमात्मरक्षा रिपुपुरावमर्दनमरिव्यूहविघातो जलेषु सेतुबन्धा वचनादन्यत्र सर्वविनोदहेतवश्चेति हस्तिगुणा
—वही, सू० ३, ६

२० जातिः कुलं वनं प्रचारश्च न हस्तिनां प्रधान किन्तु शरीरं बलं शौर्यं शिक्षा चदुचिता। सामग्रीसम्पत्तिः — वही, सू० ४

२१ अशिक्षिता हस्तिनः केवलमर्थप्राणहरा—वही, सू० ५

२२ अश्वबलं सैन्यस्य जंगमं प्रकारः। अश्वबलप्रधानस्य हि राज्ञः कदनकन्दुकक्रीड़ाः प्रसीदन्ति, भवन्ति दूरस्था अपि करस्था। शत्रव आपत्सु सर्वमनोरथसिद्धयस्तु रंगमा एव शरणमवस्कन्दः परानीकभेदनं च तुरंगमसाध्यमेतत् — वही, सू० ९

अश्वोंके उत्पत्ति स्थान,[२३] उनके गुणावगुण, शारीरिकशक्ति, शौर्य, चपलता आदि बातोंपर ध्यान देना चाहिये। रथबलका निरूपण करते हुए उसकी आवश्यकता, कार्य, अजेय शक्ति आदि बातोंपर पूर्ण प्रकाश डाला है।[२४] इस बलके निर्वाचनमें धनुर्विद्याके ज्ञाता योद्धाओंकी उपयुक्तता का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। पदातिबलमें पैदल सेनाका निरूपण किया है, पैदल सेनाको अस्त्र-शस्त्रमें पारंगत होनेके साथ-साथ शूरवीर, रणानुरागी, साहसी, उत्साही, निर्भय, सदाचारी, अव्यसनी, दयालु होना अनिवार्य बताया है। जबतक सैनिकमें उपर्युक्त गुण न होंगे, वह प्रजाके कष्ट निवारण में समर्थ नहीं हो सकता है। सेवाभावी और कर्त्तव्य-परायण होना प्रत्येककी सेवाके लिये आवश्यक बताया है।

सेनापतिकी योग्यता और गुणों का कथन करते हुए सोमदेव सूरिने कहा है कि कुलीन, आचार-व्यवहार सम्पन्न, पण्डित, प्रेमिल, पवित्र क्रियावान्, पराक्रम-शाली, प्रभावशाली, बहु कुटुम्बी, नीतिविद्या निपुण, सभी अस्त्र-शस्त्र-सवारी-लिपि भाषाओंका पूर्ण जानकार, सभीका विश्वास और श्रद्धा भाजन, सुन्दर, कष्टसहिष्णु, साहसी, युद्धविद्या निपुण तथा दया, दाक्षिण्यादि नाना गुणोंसे विभूषित सेनापति होता है। इसमें कायरता, वासना, निष्ठुरता, असहयोगिता, निन्दा, ईर्ष्या व्यसन-प्रवृत्ति, असमयज्ञता, अनावश्यक व्यय आदि दुर्गुणोंका अभाव रहना अनिवार्य बताया है। सेनापतिकी गणना राजाके प्रधान अधिकारियोंमें की गयी है। इसका निर्वाचन राजाको मंत्रियोंकी सहायतासे बहुत सोच-समझकर करना चाहिये। सोमदेव सूरिने इस विभागका बड़ाभारी उत्तरदायित्व बताया है। राज्यकी रक्षा और उसकी अभिवृद्धि करना इस विभागका ही काम माना है।

पुलिस विभाग—की व्यवस्थाके सम्बन्धमें उल्लेख करते हुए सोमदेव सूरिने कोट्टपाल दण्डपाशिकको इस विभागका प्रधान बताया है। चोरी, डकैती, बलात्कार आदिके मामले पुलिस द्वारा सुलझाये जाते थे। पुलिसको बड़े-बड़े मामलोंमें सेनाकी सहायता भी लेने को लिखा है। इस विभागको

---

२३ तर्जिका स्थलाणा करोखरा गाजिगाणा केकाणा पुष्टाहारा इत्यादि—वही, सू० १०

२४ रथैरवमर्दितं परबलं सुखेन जीयते मौल-भृत्यक-भृत्य-श्रेणी मित्राटविकेषु पूर्वं पूर्वं बलं यतेत—वही, सू० १२

सुदृढ़ करनेके लिए गुप्तचर नियुक्त करना आवश्यक है। गाँवोंमें मुखियाको ही पुलिसका उच्चाधिकारी बताया है। धन-सम्पत्ति, पशु आदिके अपहरणकी पूरी तहकीकात मुखियाको ही करनी चाहिये। मुखिया अपने मामलोंकी जाँचमें गुप्तचरोंसे भी सहायता ले सकता है। पुलिस विभागकी सफलता बहुत कुछ गुप्तचर—सी० आई० डी० पर ही आश्रित मानी गई है।[२५] गुप्तचरके गुणोंका निरूपण करते हुए बताया है कि सन्तोषी, जितेन्द्रिय, सजग, निरोगी, सत्यवादी, तार्किक, और प्रतिभाशाली व्यक्तिको इस महत्वपूर्ण पदपर नियुक्त करना चाहिये। जो राजा गुप्तचर नियुक्त नहीं करता है, वह अपनी प्रजापर ठीक तरहसे शासन नहीं कर सकता है। गुप्तचरके लिए कपटी, धूर्त, मायावी, शकुननिमित्तज्योतिष-विशारद, गायक, नर्तक, विदूषक, वैतालिक, ऐन्द्रजालिक होना चाहिये।[२६] यों तो ३४ प्रकारके व्यक्तियोंको चर नियुक्त करनेपर जोर दिया गया है। पुलिस विभागकी व्यवस्थाके लिए अनेक कानून भी बताये गए हैं तथा शासनके लिए अनेक पदों एवं उनके कार्योंका प्रतिपादन किया गया है। यशस्तिलकमें गुप्तचरोंके साथ या उनके नीचे कुछ ऐसे व्यक्तियोंका नाम भी बताया गया है जो आजकल के आई०जी० के पदके तुल्य होता था। पुलिसके अधिकार आजकी अपेक्षा सोमदेव सूरिने कम ही बताये हैं। हाँ, सेनापति का आदेश लेकर पुलिस अफसर स्वतन्त्रतापूर्वक भी मामलोंकी जाँच कर सकता है। कई धाराएँ ऐसी निर्धारित की गई हैं जिनमें पुलिसको चोरी, बलात्कार, पशुधनापहरणके मामलोंकी जाँचका पूरा अधिकार है।

कोश विभाग—का वर्णन करते हुए सोमदेव सूरिने राज्य संचालनके लिये कोशपर बड़ा भारी जोर दिया है। जो राजा सम्पत्ति विपत्तिके लिए कोश संचय करता है, वही अपने राज्यका विकास कर सकता है। कोशमें

---

२५ स्वपरमण्डल कार्याकार्यावलोकने चराः चक्षूंषि क्षितिपतीनाम्—नीतिवा०, चारसमुद्देश, सू० १

२६ अलौल्यममान्द्यममृषाभाषित्वमभ्यूहकत्वं चारगुणाः। छात्रकापटिकोदास्थितगृहयतिवैदेहिकतापसिकरातयमपट्टिकाऽहितुण्डिकशौण्डिकशौभिक-पाटच्चरविटविदूषकपीठमर्द्दननर्तकडमूकगायकवादकवाग्जीवनगणकशाकुनिकभिषगैन्द्रजालिकनैमित्तिकसूदारालिकसंवादकतीक्ष्णक्रूरजडमूकबधि-रान्धछद्मावस्थायियायिभेदेनावसर्पवर्ग—वही, सू० २, ८

सोना, चाँदी, द्रम्म—मुद्राएँ धान्यका संग्रह होना चाहिए।[२७] आचार्यने कोशको महत्ता दिखानेके लिए कोशको ही राजा बताया है, क्योंकि जिनके पास द्रव्य है वही तो संग्राममें विजय प्राप्त कर सकता है।[२८] धनहीनको संसारमें कुटुम्बी—स्त्री, पुत्रादि भी छोड़ देते हैं अतः राजाओंकी सबसे बड़ी शक्ति धन ही है। इस एक चीजके होनेसे ही समस्त वस्तुओंका प्रबन्ध किया जा सकता है। कोश संग्रहमें प्रमुख धान्य संग्रहको बतलाया है,[२९] क्योंकि सबसे अधिक प्रधानता इसीकी है। धान्यके होनेसे ही प्रजा और सेनाकी जीवन यात्रा चल सकती है। युद्धकालमें भी धान्यकी विशेष आवश्यकता पड़ती है। रस संग्रहमें लवण—नमकको प्रधानता दी गई है,[३०] क्योंकि लवणके बिना भोजनमें स्वाद ही नहीं आ सकता है। कोशकी वृद्धि और संचयके समय रस और धान्यके संग्रह पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

आय-व्यय—की व्यवस्था करनेके लिए पाँच प्रकारके अधिकारी नियुक्त करने चाहिये, जिनके नाम आदायक, निबन्धक, प्रतिबन्धक, नीवीग्राहक और राज्याध्यक्ष बताये हैं।[३१] आदायकका कार्य दण्ड आदिके द्वारा प्राप्त द्रव्यको ग्रहण करना; निबन्धकका कार्य विवरण लिखना; प्रतिबन्धकका रुपये देना; नीवीग्राहक का भण्डारमें रुपये रखना और राज्याध्यक्षका कार्य सभी आय-व्यय के विभागोंका निरीक्षण करना होता है। राज्यकी आमदनी व्यापार,

---

२७ यो विपदि सम्पदि च स्वामिनस्तंत्राभ्युदयं कोशयतीति कोशः। सातिशयहिरण्यरजतप्रायोव्यायवहारिकनाणकबहुलो महापदि व्ययसहश्चेति कोशगुणः —नीतिवा०, कोशसमुद्देश, सू० १-२

२८ कोशो राजेत्युच्यते न भूपतीनां शरीरं। यस्य हस्ते द्रव्यं स जयति। धनहीनकलत्रेणापि परित्यज्यते किं पुनर्नान्यैः। न खलु महान् कुलीनश्च यस्यास्ति धनमनूनं—वही, सू० ७-११

२९ सर्वसङ्ग्रहेषु धान्यसंग्रहो महान्। यतस्तन्निबन्धनं जीवितं सकलप्रयासश्च॥ न खलु मुखे क्षिप्तः खरोऽपि द्रम्मः प्राणत्राणाय यथा धान्यम् —नीतिवा०, अमात्यसमुद्देश, सू० ६८-६९

३० लवणसंग्रहः सर्वरसानामुत्तमः। सर्वरसमयमप्यन्नमलवणं गोमयायते —वही, सू० ७२-७३

३१ आदायकनिबन्धकप्रतिबन्धकनीवीग्राहकराजाध्यक्षाः करणानि —वही, सू० ४९

कर, दण्ड आदिसे तो करनी चाहिये, पर विशेष अवसरों पर देवमन्दिर, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का संचित धन, वेश्याओं, विधवा स्त्रियों, जमींदारों, धनियों, ग्रामकूटों, सम्पन्न कुटुम्बों एवं मंत्री, पुरोहित, सेनापति, प्रभृति अमात्योंसे धन लेना चाहिये ।[३२]

व्यापारिक उन्नति—के लिये बताया गया है कि जिस राज्यमें कृषि, व्यापार और पशु-पालनकी उन्नति नहीं होती वह राज्य नष्ट हो जाता है। राजाको अपने यहाँके मालको बाहर जानेसे रोकनेके लिये तथा अपने यहाँ बाहरके मालको न आने देनेके लिये अधिक कर लगाना चाहिये ।[३३] अपने यहाँ व्यापारकी उन्नति के लिए राजाको व्यापारिक नीति निर्धारित करना, यातायातके साधनोंको प्रस्तुत करना एवं वैदेशिक व्यापारके सम्बन्धमें कर लगाना या अन्य प्रकारके नियम निर्धारित करने चाहिये। राज्यकी आर्थिक उन्नति के लिए वाणिज्य और व्यवसाय को बढ़ाना, मालके आने-जाने पर कर लगाना प्रत्येक राजाके लिये अनिवार्य बताया है।

युद्धनीति—का वर्णन करते हुए सोमदेव सूरिने बताया है कि सर्वप्रथम शत्रुको वशमें करनेके लिये नीतिका प्रयोग करना चाहिये। जब शत्रु कूटनीतिसे वशमें न हो तो उसके साथ वीरतापूर्वक युद्ध करना चाहिये। कभी-कभी बुद्धिमान राजा अपनी कुशाग्र बुद्धि द्वारा बलवान् शत्रुको भी वशमें कर लेते हैं। जिस कार्यको सहस्रोंकी तादादमें एकत्रित चतुरंग सेना नहीं कर पाती है, उसीको प्रज्ञाके बलसे नृपति कर लेता है। युद्धके लिये

---

३२ देवद्विजवणिजां धर्माध्वरपरिजनानुपयोगिद्रव्यभागैराढ्यविधवानियोगिग्रामकूटगणिकासंघपाखण्डिविभवप्रत्यादानैः समृद्धपौरजनपदद्रविणसंविभागप्रार्थनैरनुपक्षयश्रीका मंत्रिपुरोहितसामन्तभूपालानुनयग्रहागमनाभ्यां क्षीणकोशः कोशं कुर्यात्—नीतिवा०, कोशस०, सू० १४

३३ कृषिः पशुपालनं वाणिज्या च वार्त्ता वैश्यानाम्। वार्त्तासमृद्धो सर्वाः समृद्धयो राज्ञः ॥ शुल्कवृद्धिर्बलात्पण्यग्रहणं च देशान्तरभाण्डानामप्रवेशे हेतुः —नीतिवा०, वार्तासमुद्देश, सू० १, २, ११

भूम्यर्थं नृपाणां नयो विक्रमश्च न भूमित्यागाय ॥ बुद्धियुद्धेन परं जेतुमशक्तः शस्त्रयुद्धमुपयुञ्जेत् ॥ न तथेशवः प्रभवन्ति यथा प्रज्ञावतां प्रज्ञाः। प्रज्ञा ह्यमोघं शस्त्रं कुशलबुद्धीनां —नीतिवा०, युद्धसमुद्देश, सू० ३, ४, ५, ८

जाते समयकी व्यवस्थाका वर्णन करते हुए बताया है कि राजाको दुर्गमें जल और खाद्य-पदार्थोंकी व्यवस्था कर दुर्गसे आगे शत्रुके साथ युद्ध करना चाहिये, जिससे समय पड़नेपर जल और खाद्य-पदार्थोंका उपयोग दुर्गमें प्रवेशकर किया जा सके। यदि शत्रु युद्ध द्वारा वशमें न किया जा सके तो उसके साथ ऐसी नीतिका व्यवहार करना चाहिये जिससे वह कपट द्वारा वशमें हो सके। शत्रुकी सेनामें फूट डालना, शत्रु सैनिकोंको अपनी ओर मिलाना, अपनी सेनाको सब प्रकार संतुष्ट करना, अमात्य और सेनापतिको धन-धान्य द्वारा प्रसन्न करना, प्रजामें सब प्रकार शान्ति रखनेकी चेष्टा करना, शत्रुके राज्यके ऊपर अन्य किसी राजा द्वारा आक्रमण करा देना, शत्रु सेनाकी खाद्य सामग्री नष्ट कर देना, शत्रु द्वारा अधिकृत अपने देशकी सम्पत्ति नष्ट कर देना आदि नीतिका प्रयोग करना आवश्यक बताया है। युद्धोंके लक्षण और भेद बतलाते हुए कूटयुद्ध, तूष्णीयुद्ध आदि भेदोंका सुन्दर विवेचन किया है, जिससे युद्ध सम्बन्धी नीतिका पूर्ण परिचय मिल जाता है। कूटयुद्धमें बताया है कि एक ओर से छोटी-सी सेनाकी टुकड़ी लेकर शत्रु सेनापर आक्रमण करे तथा दूसरी ओरसे दूसरी टुकड़ी द्वारा, जिसका शत्रुको पता भी न लगे धावा कर दे,[34] जिससे शत्रुसेना अपने आप अस्त्र-शस्त्र छोड़कर भाग जायेगी। यह आक्रमण इतनी बुद्धिमानी और दूरदर्शिताके साथ करना चाहिये, जिससे विरोधी सेनामें भगदड़ मच जाय और मैदान खाली हो जाय। इसी प्रकार तूष्णी युद्धमें बताया गया है कि विष प्रयोग, विषैली वेश्याओंका प्रयोग, खाद्य पदार्थोंमें विषमिश्रण, राजा या प्रधान सेनापतिको कर्त्तव्यच्युत करनेके लिये व्यसनोंका उपयोग करना; जिससे बिना युद्ध किये ही शत्रु वशमें हो जाय, तूष्णी युद्ध है।[35]

राजाको युद्धक्षेत्रमें काम आये सैनिकोंके परिवारके भरण-पोषणका प्रबन्ध करना आवश्यक है। जो राजा ऐसा नहीं करता, वह उस सैनिकके परिवारका ऋणी है।[36] इसी तरह सैनिकको युद्धक्षेत्रमें युद्धको अश्वमेधके समान

---

[34] अन्याभिमुखं प्रयाणकमुपक्रम्यान्योपघातकरणं कूटयुद्धं

—वही, सू० ९०

[35] विषविषमपुरुषोपनिषदवाग्योपजापैः परोपघातानुष्ठानं तूष्णीयुद्धः

—वही, सू० ९१

[36] राजा राजकार्येषु मृतानां सन्ततिमपोषयन्नृणभागी स्यात् साधुनोपचर्यते तन्त्रेण —वही, सू० ९३

कल्याणकारी समझना चाहिये। जो रणक्षेत्रसे भागता है, उसका इस लोक और परलोक में कल्याण नहीं हो सकता।[३७] युद्ध क्षेत्रके लिये गमन करनेकी विधिका निरूपण करते समय बताया है कि राजाको आधी सेना रणक्षेत्रमें भेजनी चाहिये और आधी सेना दुर्गमें सुरक्षित रखनी चाहिये तथा नवीन सैनिकोंकी शिक्षा भी आरम्भ कर देनी चाहिये। युद्धकालमें कृषि और पशुओंकी वृद्धिका भी पूर्ण ध्यान रखना आवश्यक है। सैनिकोंके परिनिष्क्रमणके सम्बन्धमें भी कई नियम निर्धारित किये हैं, जो कि आजकलकी युद्धनीतिसे बहुत कुछ साम्यता रखते हैं।[३८]

न्यायालयकी व्यवस्था—और उनके लिये नियमोंका निर्धारण करते हुए सोमदेव सूरिने अनेक नियमोपनियम बताये हैं तथा राजनीतिकी अनेक पेचीदी बातोंका वर्णन किया है। इन्होंने जनपद—प्रान्त, विषय—जिला, मण्डल—तहसील, पुर—नगर और ग्राम इनकी शासन-प्रणाली संक्षेपमें बतलायी है। राजाकी एक परिषद् होनी चाहिये, जिसका राजा स्वयं सभापति हो और यही परिषद् विवादों—मुकदमोंका फैसला करे। परिषद्के सदस्य राजनीति के पूर्ण ज्ञाता, लोभ, पक्षपातसे रहित और न्यायी हों। वादी एवं प्रतिवादीके लिये अनेक प्रकारके मियम बतलाते हुए कहा है कि जो अपना मुकदमा दायर कर समयपर उपस्थित न हो, जिसके बयानमें पूर्वापर विरोध हो, जो वादी या प्रतिवादी बहस द्वारा निरुत्तर हो जाय या स्वयं प्रतिवादीको छलसे निरुत्तर कर दे वह सभा द्वारा दण्डनीय है। वाद-विवादके निर्णय के लिये लिखित, साक्षी, भुक्ति—अधिकार जिसका बारह वर्ष तक उपयोग किया जा सका है प्रमाण हैं। न्यायालयमें साक्षीके रूपमें ब्राह्मणसे सुवर्ण और यज्ञोपवीतके स्पर्शन रूप शपथ; क्षत्रियसे शस्त्र, रत्न, भूमि, वाहनके स्पर्शनरूप शपथ; वैश्यसे कान, बाल और काकिणी—एक प्रकारका सिक्काके स्पर्शनरूप शपथ एवं शूद्रोंसे दूध, बीजके स्पर्शनरूप शपथ लेनी चाहिये। इसी प्रकार जो जिस कामको करता है, उससे उसी कार्यके छूनेकी शपथ लेनी चाहिये। इस तरह गुण-दोषोंका विचारकर यथार्थ न्याय करना चाहिये। राज्य व्यवस्थाके लिये अनेक धाराओंका निरूपण किया है। मुकद्दमेके निर्णयके

३७ स्वामिनः पुरःसरण युद्धेऽश्वमेधसमं। युधि स्वामिनं परित्यजतो नास्तीहामुत्र च कुशलं —वही, सू० ९४-९५

३८ वही, सू० ९६-१०१

लिये राजाको प्रत्यक्ष, अनुमान, लिखित, इन तीनोंप्रमाणोंका उपयोग करना चाहिए।[३९] इस प्रकार तन्त्र—शासन व्यवस्था सम्बन्धी नियमोंका वर्णन सोमदेव सूरिने किया है।

अवाय—नीतिका वर्णन करते हुए सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीकरण और संश्रय इन छः गुणोंका[४०] तथा राजनीतिके साम, उपदान, दण्ड और भेद इन चार अंगोंका विस्तार सहित प्रतिपादन किया है।

सन्धि—"पणबन्धः सन्धिः" अर्थात् जब राजाको यह विश्वास हो जाय कि थोड़े ही दिनोंमें उसकी सैन्य संख्या बढ़ जायगी तथा उसमें अपेक्षाकृत बल अधिक आ जायगा तो वह क्षति स्वीकार कर भी सन्धि कर ले अथवा प्रबल राजासे आक्रान्त हो और बचावका उपाय न हो तो कुछ भेंट देकर सन्धि कर ले।

विग्रह—"अपराधो विग्रहः" अर्थात् जब अन्य राजा अपराध करे, राज्यपर आक्रमण करे या राज्यकी वस्तुओंका अपहरण करे तो उस समय उसे दण्ड देनेकी व्यवस्था करना, विग्रह है। विग्रहके समय राजाको अपनी शक्ति, कोश और बल—सेनाका अवश्य विचार करना चाहिये।

यान—"अभ्युदयो यानं"—शत्रुके ऊपर आक्रमण करना या शत्रुको बलवान् समझकर अन्यत्र चला जाना यान है।

आसन—"उपेक्षणमासनं"—यह एक प्रकार विराम सन्धिका रूपान्तर है। जब उभयपक्षकी सामर्थ्य घट जाय तो अपने-अपने शिविरमें विश्रामके लिये आदेश देना अथवा मंत्री परपक्ष और स्वस्वामीकी शक्ति एवं सैन्य संख्या समान देखकर अपने राजाको एकभावस्थान लेनेका जो आदेश देता है, वह आसन है।

---

३९ नाविचार्य कार्यं किमपि कुर्यात् प्रत्यक्षानुमानागमैर्यथावस्थितवस्तुव्यवस्थापनहेतुर्विचारः —नीतिवा०, विचार समुद्देश, सू० १-२

४० सन्धिविग्रहयानासनसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यं —नीतिवा०, षाडगुण्य समुद्देशः, सू० ४५

अष्टशाखं चतुर्मूलं षष्टिपत्रं द्वयेस्थितम्।
षट्पुष्पं त्रिफलं वृक्षं यो जानाति स नीतिवान्॥
—यशस्ति०, आ० ३, श्लो० २५६

संश्रय—"परस्यात्मार्पणं संश्रय"—शत्रुसे पीड़ित होनेपर या उससे क्लेशकी आशंका कर किसी अन्य बलवान् राजाका आश्रय लेना संश्रय है।

द्वैधीकरण—"एकेन सह सन्ध्ययान्येन सह विग्रहकरणमेकेन वा शत्रौ सन्धानपूर्वं विग्रहो द्वैधीभावः"—जब दो शत्रु एक साथ विरोध करें, प्रथम एकके साथ सन्धिकर दूसरेसे युद्ध करें और जब वह पराजित हो जाय तो फिर प्रथमके साथ युद्धकर उसे भी हरा दे, इस प्रकार दोनोंको कूटनीतिपूर्वक पराजित करना या मुख्य उद्देश्य गुप्त रखकर बहिरंगमें शत्रुसे सन्धिकर अवसर प्राप्त होते ही अपने उद्देश्यके अनुसार विग्रह करना द्वैधीकरण है। यह कूटनीतिका एक अंग है, इसमें बाहर कुछ और भीतर कुछ भाव रहते हैं।

भेद—जिस उपाय द्वारा शत्रुकी सेनामेंसे किसी को बहकाकर अपने पक्षमें मिलाया जाय या शत्रु दलमें फूट डालकर अपना कार्य साध लिया जाय, भेद है। इसी प्रकार चतुरंग राजनीतिका भी भेद-प्रभेदों सहित वर्णन किया है। राजा अपनी राजनीतिके बलसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश बन जाता है। जनताके जान-मालकी रक्षाके लिये विधान भी राजाको बनाना चाहिये। राजाको प्रधानतः नियम और व्यवस्था, परम्परा और रूढ़ियोंका संरक्षक होना अनिवार्य है।

सोमदेव सूरिने राज्यका लक्ष्य धर्म, अर्थ और कामका संवर्धन माना है। धर्म संवर्धनसे उनका अभिप्राय सदाचार और सुनीतिको प्रोत्साहन देना तथा जनतामें सच्ची धार्मिक भावनाका संचार करना है। अर्थ संवर्धनके लिये कृषि, उद्योग और वाणिज्यकी प्रगति, राष्ट्रीय साधनोंका विकास, कृषि विस्तारके लिये सिंचाई और नहर आदिका प्रबन्ध करना आवश्यक बताया है। काम संवर्धनके लिये शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित कर प्रत्येक नागरिकको न्यायोचित सुख भोगनेका अवसर देना एवं कलाकौशलकी उन्नति करना बताया है। इस प्रकार राज्यमें शान्ति और सुव्यवस्था स्थापनाके लिये जनताका सर्वाङ्गीण, नैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और शारीरिक विकास करना राजाका परम कर्त्तव्य है। इसलिए राजाको निम्न प्रकार नीतिज्ञ अवश्य होना चाहिये अर्थात् जो अरि, विजिगीषु, मध्यम, उदासीन इन चारोंके अरि और मित्रके भेदसे युक्त आठ शाखावाले; साम, दान, भेद और दण्डसे युक्त चतुर मूलवाले; अरि, विजिगीषु, अपने मित्रके साथी, शत्रुके मित्र,

स्वमित्र, आक्रन्द अरिमित्र,[४१] पार्ष्णिग्रह,[४२] आक्रान्द, आक्रान्दमित्र[४३] और दो मध्यस्थ इन बारहको अमात्य, राज्य, दुर्ग, कोश और बल इन पाँचसे गुणा करनेपर साठ पत्रवाले ; सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीकरण इन छः पुष्पवाले एवं स्थान, क्षय और वृद्धि इन तीन फलवाले राजनीति वृक्षको जानता है, वही नीतिवान नृप है।

राज्याधिकार—का निरूपण करते हुए बताया है कि सबसे प्रथम पुत्रका, अनन्तर भाईका, भाईके अभावमें विमाताके पुत्र—सौतेले भाईका, इसके अभावमें चाचाका, इसके अभावमें सगोत्रीका, सगोत्रीके न रहने पर नाती—लड़कीके पुत्रका एवं इसके अभावमें किसी आगन्तुकका अधिकार होता है।[४४] इस प्रकार सोमदेव सूरिने राजनीतिका विस्तृत वर्णन किया है।

---

४१ यो विजिगीषौ प्रास्थितेपि प्रतिष्ठमाने वा पश्चात्कोपं जनयति सः पार्ष्णिग्रहः —नीतिवा०, षाड्गुण्यस, सू० २६

४२ पार्ष्णिग्रहाद्य पश्चिमः स आक्रन्दः —वही, सू० २७

४३ पार्ष्णिग्राहमित्रमासार आक्रन्दमित्रं च —वही, सू० २८

४४ सुतसोदरसपत्नपितृव्यकुल्यदौहित्रागन्तुकेषु पूर्वपूर्वाभावे भवत्युत्तरस्य राज्यपदावाप्तिः —नीतिवा०, राजरक्षासमुद्देश, सू० ८८

भगवान शान्तिनाथ के परम भक्त श्री पाड़ासाह

श्री कुन्दनलाल जैन

बुन्देलखण्ड किसी समय में बड़ा गरिमामय प्रदेश रहा है जो जेजाकभुक्ति नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है। यहाँ आल्हा-ऊदल जैसे रणबांकुरे हुए थे जिनकी वीरगाथाएँ आज भी बुन्देलखण्ड के गाँव-गाँव में गाई जाती हैं। जगनिक और ईशुरी जैसे लोक कवि हुए जिनका लोक संगीत गावों की अमराईयों और अथाईयों में आज भी सुना जाता है। बड़े-बड़े सन्त और श्रेष्ठी हुए जिन्हें लोग आज भी सम्मान और आदर से याद करते हैं। ऐसे ही भक्त श्रेष्ठियों में एक जैन श्रेष्ठि भक्तशिरोमणि, जैन जगत का गौरव श्री पाड़ा साह भी थे। यद्यपि इनका मूल नाम कुछ और ही रहा होगा परन्तु पाड़ा (भैंसा) से यह व्यापार किया करते थे और इन्हीं पाड़ों से उन्हें व्यापार में खूब लाभ हुआ था और अपार सम्पत्ति अर्जित की थी और धन से अनेकों जिनालयों का निर्माण कराया था तथा जिनविम्ब प्रतिष्ठित कराये थे इसीलिए इन्हें जो कीर्ति मिली उससे इन्हें "पाड़ा साह" नाम से विख्यात् कर दिया। पाड़ा का पर्यायवाची भैंसा है अतः लोग इन्हें भैंसा साह भी संबोधित किया करते थे। ऐतिहासिक अभिलेखों में इनका पाड़ासाह नाम से उल्लेख मिलता है।

पाड़ासाह में साह शब्द साहू के समकक्ष माना जाता है जो प्राचीन साधु शब्द के अर्थ का द्योतक है। जो श्रेष्ठता, शालीनता, उच्चता, प्रतिष्ठा आदि भावों के लिए प्रयुक्त होता था, कालान्तर में साधु साहू के रूप में परिवर्तित हुआ और वह श्रेष्ठ व प्रतिष्ठित व्यापारी के लिए प्रयुक्त होने लगा। साहू से साहूकार हो गया जो धनी का वाचक बना। यही साहू शब्द बुन्देलखण्ड में साह या सावं कहलाया जो गिरवी रखकर पैसा देता था। मध्यकाल में ऐसे ही प्रतिष्ठित और धनी लोगों के नाम के आगे साहू शब्द का प्रयोग किया जाता था जैसाकि अनेकों प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की लिपि प्रशस्तियों में पाया जाता है। पर बुन्देलखण्ड में साहू (साह) का प्रयोग नाम के बाद लगा हुआ मिलता है इसलिए साह पाड़ा 'पाड़ा साह' हो गये और इसी नाम से विख्यात् हो गये। आगे आने वाले लोगों ने इसे ही इनका मूल नाम समझकर इन्हें पाडाशाह लिखने लगे। अतः हम भी आगे अपने सम्पूर्ण लेख में पाड़ासाह शब्द का ही प्रयोग करेंगे।

पाड़ासाह का कोई विशेष इतिहास नहीं मिलता है। वे आत्म प्रशंसा

और स्वख्याति से सर्वथा दूर रहते थे। उनका मूल लक्ष्य था "नेकी कर दरिया में डाल"। उन्होंने जो कुछ किया वह जन अनुश्रुतियों और किम्बदन्तियों में विख्यात् है। वे गृहपति वंश में उत्पन्न हुए थे जो अपभ्रंश में 'गहवइ' कहलाया और हिन्दी बुन्देली में 'गहोई' हो गया। 'गहोई' वैश्य जाति है जो झाँसी, दँतिया, चिरगाँव, बरुआसागर मऊरानीपुर आदि शहरों के आसपास के इलाके में आज भी पाई जाती है। पहले इस जाति में बहुत से लोग जैन धर्मावलम्बी हुए हैं पर अब तो विरला ही कोई उस जाति का जैनी हो अन्यथा सभी वैष्णव धर्मानुयायी हैं। पाड़ासाह चन्देरी के पास थूवौन जी नामक ग्राम के निवासी थे। इन्होंने बजरंगगढ़ के पास पाड़ाडीह में फागुन सुदी ६ सं० १२३६ को शान्ति, कुंथ और अरनाथ की त्रिमूर्ति प्रतिष्ठित कराई थी ऐसा उल्लेख मिलता है।

ऐसी किम्बदन्ती है कि पाड़ासाह भ० शान्तिनाथ के परम भक्त थे अतः उन्होंने जहाँ भी जो भी मूर्ति बनवाई और प्रतिष्ठित कराई वे सब भगवान् शान्तिनाथ की ही हैं। कहा जाता है कि अहारजी क्षेत्र पर जो अट्ठारह फीट ऊँची विशालकाय कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित भ० शान्तिनाथ की सुरम्य सुन्दर प्रतिमा आज विराजमान है जिस पर सं० १२३७ का विस्तृत सात श्लोकों वाला निम्न मूर्ति लेख है, वह इन्हीं के पारिवारिकजनों ने इनके ही सहयोग से निर्मित और प्रतिष्ठित कराई थी। सब कुछ इन्हीं का था पर इन्होंने इसमें अपना नामोल्लेख वगैरह का कुछ भी संकेत नहीं कराया। मूर्ति लेख का मूल पाठ निम्न प्रकार है—

ॐ नमो वीतरागाय।

गृहपतिवंशसरोरुह सहस्ररश्मि सहस्रकूटं यः।
वाणपुरे व्यधितासीत श्री मानिहदेवपाल इति ॥१॥
श्री रत्नपाल इतितत्तनयो वरेण्यः, पुण्यैकमूर्तिरभवद् वसुहाटिकायाम्।
कीर्तिर्जगत्त्रय परिभ्रमण श्रमार्ता, यस्य स्थिराजनि जिनायतनाच्छलेन ॥२॥
एकस्तावन्नूनबुद्धिनिधिना श्री शान्ति चैत्यालयो,
दृष्टयानन्दपुरे परः परनरानन्दप्रदः श्रीमता।
येन श्री मदनेषसागरपुरे तज्जन्मनो निर्म्मिमे,
सोऽयंश्रेष्ठिः वरिष्ठ गल्हण इति श्रीरल्हणख्यादभूत ॥३॥
तस्मादजायत कुलाम्बर पूर्णचन्द्रः, श्री जाहऽस्तदनुजोदयचन्द्रनामा।
एकः परोपकृतहेतुकृतावतारो, धर्मात्मकः पुनरमोघ सुदानसारः ॥४॥

ताभ्यामशेषदुरितौघशमैकहेतुं निर्म्मापितं भुवनभूषणभूतयेतत् ।
श्री शान्ति चैत्यमिति नित्यसुखप्रदात्, मुक्तिश्रियोवदनवीक्षण लोलुपाभ्याम् ।।५।।
सम्वत् १२३७ मार्गसुदी ३ शुक्रे श्रीमत्परमर्द्धिदेवविजयराज्ये
चन्द्रभास्करसमुद्रतारका यावदत्रजनचित्तहारकाः ।
धर्मकारिकृतशुद्धकीर्तनं तावदेवजयतात सुकीर्तनम् ।।६।।
बल्हणस्य सुतः श्रीमान् रूपकारो महामतिः ।
पापटोवास्तुशास्त्रज्ञस्तेन विम्वं सुनिर्मितम् ।।७।।

उपर्युक्त मूर्ति लेख का सारांश यह है कि श्री देवपाल ने वानपुर में सहस्र कूट चैत्यालय बनवाया था। (आज भी खण्डित दशा में यह वहाँ विद्यमान है। वानपुर अहारजीके पास ही एक गाँव है, यहाँका तालाब प्रसिद्ध हैं।) देवपाल के पुत्र रत्नपाल ने वसुहाटिका नगर में एक जिन-बिम्ब निर्मित कराया था। यहाँ एक प्रसिद्ध श्रेष्ठि रल्हण रहते थे जिन्होंने नन्दपुर या आनन्दपुर में श्री शान्तिनाथ का चैत्यालय बनवाया था तथा मदनेस सागर (अहारजी) में भी शांति जिनालय बनवाया था। इन्हीं श्रेष्ठी के घर गल्हण का भी जन्म हुआ था। गल्हण के बड़े पुत्र का नाम जाहड़ था और छोटे का नाम उदयचन्द्र था। इन्हीं दोनों भाईयों जाहड़ और उदयचन्द्र ने अगहन सुदी तृतीया शुक्रवार सं० १२३७ को श्रीमान् परमर्द्धिदेव विजय के राज्य में यह शान्ति जिन बिम्ब प्रतिष्ठित कराया था। ये प्रशस्ति स्वरूप श्लोकों के रचयिता श्री धर्माधिकारी थे, जिन्हें बाल्हण के पुत्र पापट ने उत्कीर्ण किया था और यह जिनबिम्ब रचा था। इस प्रशस्ति में वर्णित नगर वसुहाटिका और नंद या आनन्दपुर यहीं कहीं आसपास होंगे जिनके नाम कालदोष से बदल गये होंगे, शोध करने से पता चल जायगा। वानपुर और मदनेस सागर तो आज भी विख्यात हैं। मदनेससागर आहारजी कैसे हो गया इसका उल्लेख हम आगे करेंगे। हमारे लेख के चरित्रनायक पाड़ासाह का मूल नाम इन्हीं गल्हण और रल्हण में से किसी एक का हो सकता है ऐसा मेरा अनुमान है। इसमें कोई आश्चर्य या अतिशयोक्ति भी नहीं है क्योंकि सभी कुछ मिलता जुलता है।

पाड़ासाह ने अहारजी, खानपुर, झालरापाटन, थूबोनजी, मियांदांत, वरीं आमोन, सतना, सुझेका पहाड़, पचराई, सेरोन आदि स्थानों पर जिनालयों का निर्माण कराया था और वहाँ सभी स्थानों पर भ० शान्तिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में जिनबिम्ब प्रतिष्ठित कराये थे। ये सभी जिनबिम्ब सभी

स्थानों पर हल्के लाल या कत्थई रंगी पाषाण के निर्मित हैं और खड्गासन मुद्रा में हैं। एक सत्रह इंच माणिक्य की बहुमूल्य पद्मप्रभु की प्रतिमा चन्देरी के पास बीठलो गाँव में भी आपने ही स्थापित कराई थी। पाड़ाशाह ने इतना विशाल सांस्कृतिक एवं धार्मिक कार्यक्रम केवल पाड़ों (भैंसों) द्वारा किए हुए व्यापार से अर्जित धन राशि द्वारा ही किया था। उन्हें इतनी अपार धन राशि और वैभव/सम्पत्ति कैसे प्राप्त हुई थी इस विषय में कई जनअनुश्रुतियाँ एवं किम्वदन्तियाँ विख्यात हैं। जैसे एक बार जब पाड़ासाह व्यापार के लिए पाड़ों का खांडू (झुण्ड) लेकर बजरंगगढ़ गये तो मार्ग में उनका एक पाड़ा कहीं खो गया जिसे ढूंढने साहजी निकल पड़े। ढूंढते-ढूंढते एक स्थान पर वह चरता हुआ मिल गया, पर साहुजी के विस्मय का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि पाड़े का पेर का नाल सोने-सा चमक रहा है; उन्होंने उसे ध्यान से देखा तो सचमुच ही वह स्वर्णमय था तो उन्होंने परीक्षण हेतु दूसरा पाड़ा भेजा तो उसका भी नाल सोने का हो गया। फिर तो क्या था, थोड़ा-सा परिश्रम करके उन्हें वहाँ पारस पथरी मिल गई और इसी पारस पथरी से उनके यहाँ अपार धन-सम्पत्ति हो गई जिसे उन्होंने जिनालयों और जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा में लगा दिया।

एक और अनुश्रुति प्रसिद्ध है कि श्री पाड़ासाह एक बार लासपुर रांगा खरीदने गये, वहाँ से लाकर रांगे को जैसे ही घर में रखने लगे तो वह सब रजत (चाँदी) हो गया। पाडासाह ने जब वह चाँदी देखी तो उन्हें भ्रम हुआ कि लासपुर के व्यापारी ने भूल से रांगे की जगह चाँदी दे दी है। तुरन्त ही वापिस गए और उनसे कहा—भाई! हमने तो रांगा खरीदा था आपने चाँदी क्यों दे दी? अपनी चाँदी वापिस लो और हमारा रांगा हमें दो। लासपुर के व्यापारी ने जब जाँच-पड़ताल की तो बोला—साहुजी! हमने तो रांगा ही दिया था। अब आपके पुण्य प्रताप से यदि वह चाँदी हो जाय तो वह आपकी ही है, हमें इससे कोई लेना-देना नहीं। हमें तो अपनी वस्तु का मूल्य मिल गया। बस यही पर्याप्त है। पाठक ध्यान दें क्या आज ऐसे क्रेता-विक्रेता मिलेंगे? पाड़ासाह चाँदी वापिस ले गये और उसे उन्होंने धार्मिक कार्यों में लगा दिया। कहा जाता है कि एक बार पाडासाह ने पंगत (सामूहिक भोज—पंक्ति भोज) की थी तो इतने पकवान और भोज्य सामग्री तैयार कराई थी कि बावन मन मिर्ची का चूरा भी कम पड़ गया था, इससे अनुमान किया जा सकता है कि उस पंगत में कितने लोग आमन्त्रित किए

गए होंगे। पाडासाह की भक्ति और सम्पत्ति अन्योन्याश्रित थी। सच्ची प्रभुभक्ति से उन्हें अपार सम्पति मिली थी और उस सम्पत्ति को वे प्रभुभक्ति के प्रतीक जिनालय और जिनबिम्बों के निर्माण और प्रतिष्ठा में सहर्ष मुक्तहस्त से व्यय किया करते थे।

मदनेससागर का नाम अहारजी क्यों पड़ा ? इस सम्बन्ध में किम्वदन्ति है कि पाड़ासाह अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत का पालन दृढ़ता से किया करते थे। अतिथि को भोजन कराए बिना स्वयं भोजन नहीं करते थे। एक बार ऐसा कुसंयोग जुड़ा कि तीन दिन तक पाड़ासाह को कोई भी अतिथि न मिला फलस्वरूप वे भी निराहारी रहे। चौथे दिन पुनः अतिथि की प्रतीक्षा में खड़े हुए कि सहसा एक वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनि वहाँ आ पधारे। पाड़ासाह के हर्ष का पारावार न रहा। उन्होंने भक्तिभाव से पुलकित हो मुनिश्री को आहार दान दिया। तभी से मदनेससागर का नाम अहारजी पड़ गया। यह स्थान बुन्देलखण्ड में चमत्कृत अतिशय क्षेत्र के रूप में विख्यात् है।

पाडासाह बुन्देलखण्ड के प्रतिष्ठित जैन व्यापारी थे अतः व्यापार प्रणाली का संक्षिप्त-सा दिग्दर्शन करा देना कोई अनुचित न होगा क्योंकि इस प्रणाली में जैनत्व एवं जैन सांस्कृतिक तत्वों का समावेश था। जैन पर्वों एवं त्योहारों का ध्यान रखा जाता था तथा जैनाचार विचार का यथाशक्ति पालन भी किया जाता था। उस समय आज जैसे यातायात के साधन तो सुलभ थे नहीं। न सड़कें थी ना ही वाहन। वाहन के नाम पर बैलगाड़ी या घोड़ागाड़ी ही होते थे जिन्हें बहली या रथ कहा जाता था। ये केवल प्रतिष्ठा के प्रतीक थे और केवल सवारी के लिए ही प्रयुक्त होते थे अन्यथा व्यापारिक वस्तु लादने, लाने व ले जाने के लिए जानवरों के झुण्ड होते थे जिन्हें खांडू कहा जाता था। ये जानवर घोड़े, बैल, खच्चर, गधे, भैंसे, पाड़े, ऊँट आदि होते थे। व्यापार के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना उन दिनों निरापद तो था नहीं, जगह-जगह चोरों, लुटेरों और डाकुओं का भय बना रहता था अतः व्यापारी लोग समूह बनाकर व्यापार के लिए निकला करते थे। जब यही समूह तीर्थयात्रा जैसे धार्मिक कार्यों के लिए जाता था तो इनका नेतृत्व करने वाला व्यक्ति "संघाधिप या संघाधिपति" की उपाधि से विभूषित किया जाता था।

जैन व्यापारियों का खांडू प्रायः कार्तिकी अष्टाह्निका के बाद प्रस्थान किया करते थे और मार्ग में विभिन्न स्थानों पर लेनदेन करते हुए फाल्गुनी

अष्टाह्निका से पूर्व तक अपने गन्तव्य स्थान पर अवश्य ही पहुँच जाते थे जहाँ पूजन, भजन, देव दर्शन, शास्त्र प्रवचन आदि की समुचित व्यवस्था होती थी। मार्ग में वे रात्रि विश्राम ऐसे ही स्थानों पर किया करते थे जहाँ देव दर्शन पूजन के लिए जिनालय या जिन चैत्यालय होते थे। गन्तव्य स्थान तक लगभग चार मास के प्रवास के बाद घर वापिसी का प्रस्थान सुदी फाल्गुन पूर्णिमा (अष्टाह्निका) समाप्ति के बाद होता और आषाढ़ी अष्टाह्निकासे पूर्व घर पहुँच जाते जिससे वर्षा ऋतु के कारण रास्ते दलदल (कीचड़) मय न हो जावे तथा नदी-नालों में बाढ़ न आ जावे। पर्यूषण, रक्षाबंधन आदि पर्वों और त्योहारों का आयोजन घर पर ही करते। मार्ग में सुरक्षा हेतु हर खांड़ू के साथ पहलवानों एवं सिपाहियों का संगठन साथ चलता। इन खांडुओं के माध्यम से कथा, कहानियों एवं धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक रीति-रिवाजों का आदान-प्रदान एवं विकास पर्याप्त मात्रा में हुआ। इनका इतिहास बड़ा रोचक और ज्ञानवर्द्धक है।

इस तरह भक्त शिरोमणि पाड़ासाह ने बुन्देलखण्ड में जैनधर्म और संस्कृति की ध्वजा फहराई, बुन्देलखण्ड के कण-कण में उनकी यशोगाथा बिखरी पड़ी है, यहाँ का हर जैनी बड़े आदर और श्रद्धा भाव से उनका पुण्य स्मरण करता है।

"ध्यानस्ते सुकृतिनः नास्ति येषाम् यशः काये जरामरणजम्भयम्"— आत्म-ख्याति और प्रतिष्ठा से दूर पाड़ासाह अपने सत्क्रियाकलापों से इतिहास के पृष्ठों पर सुनहरे हस्ताक्षर छोड़ गए हैं। धन्य हैं वे।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

प्रभु बिना कहीं सोए, बिना कहीं बैठे व्रत यापन करते हुए तीन वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में पृथ्वी पर विचरण करते रहे। तदुपरान्त वे उसी सहस्राम्रवन उद्यान में पुनः लौट आए और प्रतिमा धारण कर आम्रवृक्ष के नीचे अवस्थित हो गए। कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन चन्द्र जब रेवती नक्षत्र में था तब घाती कर्मों के क्षय हो जाने से प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवों ने तत्क्षण समवसरण की रचना की। प्रभु पूर्व द्वार से उसमें प्रविष्ट हुए और तीन सौ साठ धनुष दीर्घ चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा देकर नमो तित्थाय कहकर पूर्व दिशा में रखे सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये। व्यंतर देवों ने अन्य तीन ओर उनकी प्रतिमूर्तियाँ रखीं। चतुर्विध संघ भी यथास्थान बैठ गया। प्रभु समवसरण में अवस्थित हुए हैं जानकर कुरुपति अरविन्द वहाँ आए और प्रभु को प्रणाम कर शक्र के पीछे बैठ गए। तदुपरान्त शक्र और अरविन्द ने प्रभु की इस प्रकार स्तुति की—

त्रिभुवनपति की जय हो! निखिलजन सुहृद की जय हो! करुणा सागर की जय हो! अप्राकृत शक्तिधारी की जय हो! सूर्य किरणों से सर्वदा समस्त विश्व आलोकित होता है। चन्द्र किरणों से पृथ्वी का ताप दूर होता है। वृष्टि के जल से धरती को सजीवता प्राप्त होती है। हवा से वह पुनरुज्जीवित होती है—इनके पीछे जैसे कोई उद्देश्य नहीं होता! उसी भाँति हे देव, आपकी तपश्चर्या भी त्रिलोक के कल्याण के लिए है। (अर्थात् कोई उद्देश्य प्रणोदित नहीं है।) इतने दिनों तक पृथ्वी अन्धकारमय थी अब वह आपके कारण आलोकित हो गयी है, उसे चक्षु प्राप्त हुए हैं। अब नरक के द्वार बन्द हो जायेंगे। तिर्यंच योनि में सामान्य जन ही जन्म ग्रहण करेंगे। स्वर्ग उपनगर की भाँति समीप हो जाएगा और मोक्ष भी अब दूर नहीं रहेगा। सबके कल्याण के लिए जब आप पृथ्वी पर विचरण करेंगे तब ऐसा कौन-सा अचिन्त्य आनन्द है जिसे मनुष्य प्राप्त नहीं करेगा?

इस प्रकार स्तुति कर सौधर्मेन्द्र और अरविन्द चुप हो गए। तब भगवान अरनाथ ने यह देशना दी—

संसार के चार पुरुषार्थों में मोक्ष ही श्रेष्ठ या आनन्द सरोवर है। मोक्ष ध्यान की साधना से सिद्ध होता है और ध्यान मन पर निर्भर करता है। इसलिए योगी पुरुष मन को आत्मा के अधिकार में रखते हैं किन्तु राग-द्वेष उन पर विजय प्राप्त कर उन्हें पुद्‌गलों के अधीन कर देते हैं। सावधानीपूर्वक निग्रह कर मन को शुभ परिणति में लगा देने पर भी निमित्त प्राप्त होने पर वे बार-बार पिशाच की भाँति उसे अपने अधीन कर लेते हैं। राग-द्वेष रूपी अन्धकार में जीव को अन्धा अन्धे को ले जाने की तरह अज्ञान की अधोगति में ले जाकर नरक रूपी गह्वर में पटक देता है। द्रव्यों में आसक्ति (रति) और आनन्द (प्रीति) ही राग और अप्रीति द्वेष है। यही राग-द्वेष समस्त प्राणियों के लिए दृढ़ बन्धन रूप है और समस्त दुःखों का मूल है। संसार में यदि राग-द्वेष नहीं रहता तो यहाँ सुख से कोई विस्फारित नेत्र नहीं होता, उसी प्रकार दुःख से करुणाद्र भी नहीं होता। फिर तो सभी जीवों को मोक्ष प्राप्त हो जाता। राग के अभाव में द्वेष और द्वेष के अभाव में राग होता ही नहीं। इनमें एक का परित्याग कर देने से दोनों का ही परित्याग हो जाता है। कामादि दोष राग के भृत्य और मिथ्या अभिमान आदि द्वेष के अनुचर हैं। मोह राग द्वेष का पिता, बीज, नायक अथवा परमेश्वर हैं। यह मोह रागादि से भिन्न नहीं है। एतदर्थ समस्त दोषों का पितामह मोह ही है। मोह से सभी को सावधान रहना चाहिए। संसार में राग, द्वेष और मोह ये तीन ही दोष हैं, उन्हें छोड़कर अन्य कोई दोष नहीं है। इस त्रिदोष के कारण ही जीव संसार समुद्र में परिभ्रमण करता है। जीव का स्वभाव तो स्फटिक की भाँति स्वच्छ है, उज्ज्वल है। किन्तु इस त्रिदोष के कारण ही जीव के विभिन्न रूप होते हैं। विश्व के आध्यात्मिक राज्य में यह कैसी अराजकता है कि राग द्वेष और मोह रूप भयंकर दस्यु जीवों का ज्ञान रूपी सर्वस्व और स्वरूप स्थिरता रूपी सम्पत्ति दिन के समय ही सबके सामने लूट लेता है। जो जीव निगोद में है और जो शीघ्र मुक्ति प्राप्त करने वाले हैं उन सभी पर मोहराज की निर्दय निष्ठुर सेना टूट पड़ी है। मोहराज को क्या मुक्ति से शत्रुता है और मुमुक्षुओं से बैर है जिसके कारण वह जीवों की मुक्ति के सम्बन्ध में बाधक है? आत्मार्थी मुनियों को न सिंह का भय रहता है न बाघ का और नहीं सर्प, चोर, अग्नि और जलका, वे भी रागादि त्रिदोष से भयभीत हैं कारण ये इह भव और परभव नष्ट कर देते हैं। संसार अतिक्रमण का जो पथ योगी जनों ने ग्रहण किया है वह संकीर्ण है जिसके दोनों ओर राग-द्वेष रूपी बाघ और सिंह खड़े हैं। अतः आत्मार्थी मुनियों के लिए उचित है कि वे *प्रमाद रहित*

होकर समभाव सहित पथ पर चलें और राग-द्वेष रूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ।

भगवान की देशना सुनकर बहुतों ने मुनिधर्म ग्रहण किया और कुम्भ आदि ३३ गणधर बने । प्रथम याम उत्तीर्ण होने पर प्रभु देशना से निवृत्त हुए। तब गणधर कुम्भ ने प्रभु के पादपीठ पर बैठकर देशना दी। दूसरा याम बीत जाने पर वे देशना से निवृत्त हो गए। शक्र और अन्यान्य सभी प्रभु को वन्दना कर स्व-स्व निवास को लौट गये ।

भगवान के शासन में त्रिनेत्र कृष्णवर्ण शंखवाहन यक्षेन्द्र उत्पन्न हुए। जिनके दाहिने छः हाथों में से पाँच हाथों में बिजोरा नींबू, तीर, खड्ग, हथौड़ा और पाश था और छठा हाथ वरद मुद्रा में था। बायीं ओर के छः हाथों में क्रमशः नकुल, धनुष, ढाल, त्रिशूल, अंकुश और अक्षमाला थी। इसी भाँति नीलवर्णा पद्मासना यक्षिणी उत्पन्न हुयी जिनके दाहिने दोनों हाथों में बिजोरा नींबू और नील कमल था एवं बाएँ दोनों हाथों में रक्त कमल और अक्षमाला थी। ये दोनों भगवान के शासन देव और देवी बने जो सर्वदा भगवान के निकट रहते थे ।

भगवान अरनाथ ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए एक दिन पद्मिनीखण्ड नगर के बाहर अवस्थित हुए। वहाँ समवसरण में भगवान ने देशना दी। उनकी देशना के पश्चात् गणधर कुम्भ ने समस्त सन्देहों का निरशन करने वाली देशना दी। देशना के समय एक बौने जैसे व्यक्ति के साथ श्रेष्ठी सागर दत्त आए और देशना सुनने लगे। देशना के अन्त में सागर दत्त खड़े हुए और गणधर कुम्भ को प्रणाम कर बोले—

भगवन्, स्वभाव से ही संसार के सभी जीव दुःखी हैं। विशेष कर मैं, जिसे कहीं कोई सुख नहीं है। मेरी पत्नी का नाम जिनमति है जिसके गर्भ से प्रियदर्शना नामक मेरे एक कन्या हुयी। वह स्वर्ग की देवी से भी अधिक सुन्दर थी। वह समस्त प्रकार की कलाओं में पारंगत होती हुयी यौवन को प्राप्त हुयी। वह जैसी सुन्दर थी वैसी ही चतुर भी। उसके लिए उपयुक्त वर को लेकर मैं चिन्तित था। मुझे चिन्तित देखकर जिनमति बोली, स्वामी, आप चिन्तित क्यों हो रहे हैं? मैंने कहा, प्रिये, बहुत ढूँढने के बाद भी प्रियदर्शना के उपयुक्त वर मैंने खोज नहीं पाया है, इसीलिए चिन्तित हूँ। जिनमतिने उत्तर दिया स्वामी, उसके लिए ऐसा श्रेष्ठ पति खोजिए जिसके हाथों में सौंपकर हमें पश्चात्ताप न करना पड़े। मैंने कहा, यहाँ भाग्य ही

बलवान होता है। अपना भला तो सभी चाहते हैं, कोई भी अपना बुरा नहीं चाहता है।

इस चर्चा के पश्चात मैं बाजार गया। वहाँ ताम्रलिप्ति के धनिक वणिक ऋषभ दत्त से मेरा मिलाप हुआ। स्वधर्मी होने के नाते पुराने मित्रों की भाँति हम लोगों में व्यवसाय के विषय में चर्चा हुयी। एकदिन वह कार्यवश मेरे घर आया और प्रियदर्शना को जो देखा तो बहुत देर तक देखता ही रह गया। उसने मुझ से पूछा यह किसकी लड़की है? मैंने जवाब दिया—मेरी लड़की है। किन्तु आप उसकी ओर इस प्रकार क्यों देख रहे है? ऋषभदत्त ने कहा, श्रेष्ठी, वीरभद्र नामक मेरा एक पुत्र है। वह सुशील और तरुण है। रूप में वह कन्दर्प, काव्य रचना में शुक्र, वाग्मिता में वृहस्पति, शिल्पकर्म में वर्द्धकी, संगीत में हूहू, वीणा वादन में तम्बरु, नाट्यकला में भरत और कौतुक करने में नारद है। गुटिका भक्षण कर वह देवों की तरह अपना रूप परिवर्तित कर सकता है। और अधिक क्या कहूँ ऐसी कोई कला नहीं है जिसे ईश्वर की भाँति वह जानता न हो। उसके उपयुक्त कन्या मैं अन्यत्र कहीं खोज नहीं पाया। बहुत दिनों पश्चात् आपकी कन्या को देखकर लगा कि यह उसके उपयुक्त है।

मैंने कहा, मेरी यह कन्या भी समस्त कलाओं में निपुण है। इसके वर के लिए मैं भी चिन्तित हूँ। सौभाग्य से आज आप से मेरा मिलना हुआ। मैं चाहता हूँ वर-वधू रूप में इनका मिलन हो।

उपयुक्त पुत्रवधू प्राप्त कर ऋषभदेव आनन्दित होकर स्व-नगर में लौट गया और वीरभद्र को आत्मीय परिजनोंसहित यहाँ भेजा। मैंने जब वीरभद्र को देखा तो उसके पिता के कथनानुसार उसे रूप, यौवन और गुणसम्पन्न पाया। तदुपरान्त एक शुभ दिन वीरभद्र ने उच्चकुलजात महिलाओं के मंगलगीत और आशीर्वचन के मध्य प्रियदर्शना का पाणिग्रहण किया। कुछ दिन यहाँ रहकर वह स्वपत्नी को लेकर स्वदेश लौट गया क्योंकि स्वाभिमानी श्वसुर गृह में अधिक दिनों तक नहीं रहते।

एक दिन मैंने सुना कि वीरभद्र रात्रि के शेष याम में मेरी निद्रित कन्या का परित्याग कर अन्यत्र कहीं चला गया। मैं उसी दुःख से दुःखी था। यह वामन उसकी खबर लेकर आया है। किन्तु वह कुछ भी ठीक से समझा नहीं पा रहा है। हे भगवन्, यथार्थ स्थिति क्या है—यह आप ही बतलाएँ।

यह सुनकर दयालु हृदय गणधर कुम्भ ने सागरदत्त से कहा—

उस रात्रि में आपके जँवाई ने सोचा—मैं विभिन्न कलाओं में पारदर्शी और मंत्रविद् हूँ। आश्चर्यजनक बहुविध दिव्य गुटिकाओं का प्रयोग मैं जानता हूँ और सर्वप्रकार की शिल्पकलाओं में भी पारंगत हूँ किन्तु उनका प्रदर्शन यहाँ न कर सकने के कारण वे बेकाम हो गयी है। यहाँ गुरुजनोंके सम्मुख वे अन्यथा सोचेंगे समझकर अपने पराक्रम को व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ। हाय मुझे धिक्कार है! मैं यहाँ कूपमंडुक की भाँति रह रहा हूँ अतः मैं अन्यत्र जाऊँगा और अपना पराक्रम दिखाऊँगा। यह सोचकर वह उठ बैठा किन्तु तभी सोचा यदि मेरी पत्नी कपट निद्रा में हुयी तो वह मुझे बाधा देगी। अतः उसने उसे जगाया। किन्तु वह बोली मुझे परेशान मत करो। मेरा माथा दुःख रहा है। तब वीरभद्र बोला, तुम्हारा माथा दुख रहा है इसमें किसका दोष है? प्रियदर्शना बोली, तुम्हारा। वीरभद्र ने पुनः प्रश्न किया, कैसे? प्रियदर्शना बोली, रात्रि के इस अन्तिम प्रहर में तुम जो इस प्रकार बोल रहे हो उसी कारण। तब वीरभद्र बोला, तुम मुझ पर क्रोध मत करो मैं तुम्हें इस प्रकार अब कभी दुःखी नहीं करूँगा।

उद्देश्यमूलक भाव से उसे इस प्रकार कहकर वीरभद्र ने उसके साथ केलि की। क्लान्त होकर उसकी पत्नी पुनः सो गयी। उसका उद्देश्य वह जान भी नहीं पाई। इस बार उसे सचमुच निद्रामग्न देखकर वह वस्त्रादि लेकर उसका परित्याग कर घर छोड़कर चला गया। गुटिका भक्षण कर उसने स्वयं को कृष्ण वर्णीय बना लिया। अक्षरों के परिवर्तन से कविता का रूप पलट जाता है। उसी प्रकार रंग परिवर्तन से आकृति भी अन्य प्रकार की होती है। तदुपरान्त वह स्वच्छन्द भ्रमण करता हुआ विद्याधर की भाँति अपनी कला-कौशल से स्वयं का श्रेष्ठत्व प्रतिपादित करता हुआ ग्राम नगर में विचरण करने लगा। प्रियदर्शना भी पतिगृह त्यागकर पितृगृह चली आई। कारण उच्चकुलजाता के लिए स्वामी बिना अन्यत्र रहना उचित नहीं होता।

इस भाँति घूमता हुआ वीरभद्र सिंहलद्वीप के रत्नपुर नगर में गया। वहाँ राजा रत्नाकर राज्य करते थे। वह उस नगर के शंख से धवल गुण सम्पन्न श्रेष्ठी शंख की दुकान पर जाकर बैठ गया। उसे देखकर श्रेष्ठी ने पूछा—तुम कहाँ से आए हो? वीरभद्र ने जबाव दिया—मैं ताम्रलिप्त से आया हूँ। घर से रूठकर निकल पड़ा हूँ। श्रेष्ठी ने कहा—पुत्र, तरुण अवस्था में तुम्हारा इस प्रकार रूष्ट होकर निकलना, उचित नहीं है। किन्तु भाग्यवश ही तुम सकुशल मेरे यहाँ आ गए।

ऐसा कहकर श्रेष्ठी शंख उसे स्व-पुत्र की तरह अपने घर ले गए और स्नानाहार के पश्चात् उससे बोले—मेरे कोई पुत्र नहीं है। आज से तुम मेरे पुत्र हो। मेरी अतुल सम्पत्ति के आज से तुम्हीं अधिकारी हो। देव की तरह मेरी इस अतुल सम्पति का भोग कर तुम मुझे दृष्टि का आनन्द दो। धन-संचय करना कठिन नहीं है। उस धन का उपभोग करनेवाला पुत्र पाना कठिन है। वीरभद्र विनीत भाव से बोला—यद्यपि मैं पितृगृह त्याग कर आया हूँ, किन्तु लगता है यहाँ भी मैं पितृगृह में ही आ गया हूँ। आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। मैं आपका शिष्य हूँ। पुत्र तो पुत्र ही होता है। किन्तु मैं आपका धर्मपुत्र हूँ।

अब वीरभद्र श्रेष्ठी शंख के घर रहने लगा और अल्प दिनों के मध्य ही उसकी कला और शिल्प कौशल ने नगर के अधिवासियों को विस्मित कर दिया।

अनिन्द्य सुन्दरी अनंग सुन्दरी राजा रत्नाकर की एकमात्र कन्या थी। किन्तु वह पुरुष विद्वेषी थी। श्रेष्ठी शंख के भी विनयवती नामक एक सुशीला कन्या थी। वह प्रतिदिन अनंगसुन्दरी के पास आया-जाया करती थी। एक दिन वीरभद्र ने उससे पूछा—बहन, तुम रोज राजमहल में क्यों जाती हो? विनयवती ने उसे सारी बात स्पष्टतया बताई। तब वीरभद्र ने पूछा—तुम्हारी सहेली अपना समय कैसे व्यतीत करती है? विनयवती ने बताया—वीणावादन आदि कलाभ्यास में। वीरभद्र ने बोला—तब तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। विनयवती ने उत्तर दिया—पुरुषों का वहाँ जाना निषेध है। यहाँ तक कि बालक का भी। तुम वहाँ कैसे जाओगे? वीरभद्र ने कहा—स्त्रीवेश में। विनयवती के सम्मत होने पर अभिनेता की तरह उसने स्त्रीवेश धारण कर लिया। उसे देखकर अनंगसुन्दरी ने विनयवती से पूछा—सखि, यह तुम्हारे साथ कौन आयी है? विनयवती ने कहा—मेरी बहन।

अनंगसुन्दरी एक नवीन चित्रपट पर विरहिनी हंसिनी का चित्र अंकित कर रही थी। वह चित्र देखकर वीरभद्र बोला—आप विरहिनी की वेदना को परिस्फुट करना चाह रही हैं किन्तु उसकी आँखें वैसी नहीं बनी है। यह सुनकर अनंगसुन्दरी ने वह पट, रंग और तूलिका वीरभद्र को देती हुई बोली—तब तुम वह अंकित कर दिखाओ।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

जैन सिद्धान्त भास्कर ।। दिसम्बर १९८९

इस अंक में है 'वसुदेवहिण्डी और उसमें वर्णित अंग और मगध जनपद' (डा० श्री रंजन सूरिदेव), 'अनुसन्धान की कार्यप्रणाली : विदेशी जैन विद्वानों के संदर्भ में' (डा० जगदीश चन्द्र जैन), 'ब्राह्मण पुराणमें पांचाल : ऐतिहासिक दृष्टि' (डा० अरुणलता जैन), 'कौशाम्बी (गढ़वा) मन्दिर का आधुनिक इतिहास' (सुबोध कुमार जैन), 'योग परम्परा में आचार्य हरिभद्र का योगदान' (डा० अरुणा आनन्द), 'आचार्य अमृतचन्द्र सूरि कृत समय सार टीका का दार्शनिक अनुशीलन' (डा० नागेन्द्र मिश्र), 'नाग जाति और नाग-भाषा' (गणेश प्रसाद जैन), 'Selected Abstract of Articles from Digest of Indological Studies' (S. K. Jain), 'The Jaina Concept of Ahimsa : An Introduction' (Narendra Kumar Dash).

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

CIRCULAR ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :
BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253
Vol. XIV No. 11 TITTHAYARA March 1991
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73